CC BY

अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत विदुषी सम्मेलन 2023

डॉ.ज्योत्सना सी.रावल*

*आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज, वडनगर, संस्कृत विभाग

रामायण युग में गृहस्थ नारी

प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुरस्कर्ताओं ने मानव-जीवन की वाल, युवा, प्रौढ़ा एवं वृद्धा इन चार अवस्थाओं के लिए चार आश्रमों- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास का विधान किया था। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् पुरुष का समावर्तन संस्कार किया जाता था। इस समय ब्रह्मचारी विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। अन्य तीनों आश्रमों की अपेक्षा में गृहस्थाश्रम को विशेष महत्व दिया गया। वेद, ब्राह्मण, सूत्र एवं स्मृति-ग्रंथो में गृहस्थाश्रम की मुक्त कन्ठ से प्रशंसा की गयी। मनु, बिधायन, वसिष्ठ,गौतम, एवं याज्ञवल्क्य ने अपनी-अपनी रीति से अन्य आश्रमों की अपेक्षा गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। ऋग्वेद में भी इस आश्रम का विधान है। शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार व्यक्ति विवाह करके संतानोत्पत्ति करने पर ही पूर्ण होता है। रामायण-युग में भी गृहस्थाश्रम एवं पत्नी का महत्व लगभग इसी रूप में था। इसी समय पत्नी के साथ धर्माचरण करने पर बहुत बल दिया जाता था। अपने इसी महत्व के कारण पत्नी को 'सहधर्मचारिणी' एवं 'सहधर्मचारी' कहा जाता था।

यद्यपि वेदों में पुत्र का अपेक्षाकृत अधिक महत्व था, फिर भी ऋग्वेद में कहीं भी पुत्री के जन्म की निन्दा नहीं की गई है। वैदिक काल के अंत में पुत्री का महत्व कम होने लगा। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया कि अगर पिता जीते हुए पुत्र का मुँह देख ले तो उसका ऋण छूट जाता है। यद्यपि वैदिक साहित्य में पुत्री का महत्व पुत्र से अपेक्षाकृत कम है फिर भी वृहदारुण्य कोपनिषद विदुषी स्त्रियों की चर्चा है। इसमें पता चलता है की कन्या को भी पुत्र के समान ही शिक्षा दी जाती थी। बच्चों के संस्कार समानरूप से पुत्रों और पुत्रियों के लिए सम्पन्न होते थे। अथर्ववेद का एक पूरा सूक्त उपनयन संस्कार रखता है। उसमे कन्या का भी उल्लेख है। सूत्र साहित्य में सभी संस्कार रखता है। उसमे कन्या का भी उल्लेख है। सूत्र साहित्य में सभी संस्कार समानरूप से पुत्रों और पुत्रियों के लिए संपन्न किये जाते थे। परन्तु बाद में मनुं और विष्णु में स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार अनावश्यक धोधित करते है क्योंकि पति सेवा ही उसका स्थान लेता है।

ऋग्वेद के समय से अभ्रातृका कन्या को दुर्भाग्यशाली माना गया है। उसके चरित्र में संदेह प्रकट किया जाता है। वह प्रायः अविवाहित ही रह जाती थी।

रामायण युग में विवाह कन्या के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था। माता-पिता एवं भातृवर्ग का अपनी-अपनी पुत्रियों एवं भगितियों के विवाह के लिए चिंतित होना इस तथ्य का प्रमाण है। सीता, अहल्या,मन्दोदरी एवं शूपर्णखा के विवाह योग्य हो जाने पर राजा जनक ब्रह्मर्षि कुशध्वज दानवराज भय एवं रावण को उनके विवाह की चिन्ता सताने लगी थी। राक्षसराज सुमाली ने प्रौढावस्था में प्रवेश कर रही अपनी कैकसी को विश्रवा मुक्ति के समीप जाने एवं प्रतिरूप में वरण व सेवा करने का आदेश दिया था। अपनी सदाचारिणी कन्याओं को वायुदेव के प्रकोप से कुब्जा हुआ देखकर राजर्षि कुशनाभ को उनके विवाह की चिन्ता ने घेर लिया था। माता-पिता कन्या पितृत्व की निन्दा करते तथा उसे अपमानजनक कहते हुए भी कन्या के लिए सुयोग्य वर खोजने में निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। इसमें भी यही सिद्ध होता है कि रामायण काल में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना आवश्यक था। इस समय उसके विवाह में जो भी विलम्ब होता था उसका एकमात्र कारण अनुरप वर का विलम्ब से प्राप्त होना था। कैकसी का विवाह इसी कारण से युवावस्था के प्रारम्भ में नहीं हो रहा था।

संध्या एवं विभीषण के वचनों से तो कन्या के विवाह की अनिवार्यता और अधिक स्पष्ट रूप में सिद्ध होती है। अपनी कन्या सालकहंकहा के विवाह का प्रभाव आने पर संध्या ने कहा था-कन्या किसी न किसी को तो प्रदान करती है। अतः इसे ही क्यों न कर दूं इसी प्रकार कुम्भीनसी का अपहरण हो जाने से स्वयं को अपमानित अनुभव करनेवाले विभीषण की उक्ति है कि हम को पहले ही

कुम्भीनसी का विवाह कर देना चाहिए था। इन दोनों ही प्रसंग में कन्या के लिए अवश्य दातव्या एवं अवश्यमेव दातव्य शब्दों का प्रयोग हुआ है।

इतना सब होने पर भी रामायण में सोमदा शबरी एवं स्वयंप्रभा इन तीनो के आजीवन कौमारव्रत धारण करने का विवरण मिलता है। शबरी एवं स्वयंप्रभा का आचरण अविवाहितावस्था में अर्थात गृहस्थाश्रम का अवलम्ब लिए बिना ही वानप्रस्थियों जैसा था सोमदा, शबरी एवं स्वयंप्रभा के विवरण के आधार पर निष्कर्षात्मक रूप में कहा जा सकता है कि रामायण-युग में विवाह संस्था स्त्रियों के लिए अनेकानेक कारणों से आवश्यक तो मानी जाती थी।

किन्तु वह अनिवार्य भी थी एसा कह सकना कठिन है। यही एसा ही होता तो राजा जनक एवं ब्रह्मर्षि कुशध्वज अपनी कन्या सीता एवं वेदवंती के लिए वर ढूंढते समय उतनी कठिन प्रतिज्ञा एवं महत्वकांक्षा न करते जो उन्होंने की।

वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से ज्ञात होत है कि भारत वर्ष मे समाज मे नारियो को बहुत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। प्राचीन समय मे स्त्रियों कि शिक्षा-दीक्षा की सुन्दर व्यवस्था थी और वे सामाजिक कार्यो मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। वे अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त युद्धों तक मे जाति थीं और अपनी वीरता कि अमिट छाप छोडती थीं।

ऋग्वेद मे 24 और अथर्ववेद में 5 वैदिक ऋषिकाओं का उल्लेख है। इन्होने वैदिक मंत्रो का दर्शन किया था। ऋग्वेद में 24 ऋषिकाओं द्वारा द्रष्ट मन्त्र 224 हैं और अथर्ववेद में 5 ऋषिकाओं द्वारा स्पस्ट मन्त्र 198 हैं। इस प्रकार इन दोनों वेदों में ऋषिकाओं के द्रष्ट मंत्रो कि संख्या 522 है।

इनमे कुछ सूक्त अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वाक् आम्भृणी के वाक् सूक्त में वाक् तत्त्व (ैचममबी) का शास्त्रीय विवेचन हैं। यह भाषा विज्ञान कि द्रष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सूक्त हैं। श्राद्ध सूक्त मनोवैज्ञानिक द्रष्टि से अत्यन्त सारगर्भित हैं। इसमें श्रद्धा का महत्व वर्णित हैं। सूर्या सावित्री के सूक्तों में विवाह-संस्कार वर्णित है। ये सांस्कृतिक द्रष्टि से महत्वपूर्ण है। इन्द्राणी के सूक्त में स्त्रियों के गौरव का उल्लेख है। रोमशा ब्रह्मवादिनी से ज्ञात होता है कि स्त्रियों आध्यात्म का भी उपदेश करतीं थी। एक मंत्र में इंन्द्राणी को सेनानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इसमे कहा गया है कि इन्द्राणी सेना का नेतृत्व करें। वह सदा विजयिनी रही है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि वैदिक काल में नारियों को भी पुरुषों के तुल्य शिक्षा-दीक्षा समान अधिकार प्राप्त था। ब्राह्मण-ग्रंथो में भी नारी का गौरव वर्णित है। नारी को सावित्री कहा गया है। (स्त्री सावित्री। जैमिनीय उप. ब्रा. 4.27.17)। नारी अर्धाङ्गिनी है। वह आत्मा का आधा अंश है (अर्धो वा एष आत्मन; यत् पत्नी। तैत्ति. ब्रा. 3.3.3.5)। नारी के बिना यज्ञ अपूर्ण है। अतः सपत्नी का यज्ञ करें। (अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः। तैत्ति. ब्रा. 2.2.2.6)। पत्नी के बिना जीवन अधूरा है। (यावत् जायां न विन्दते, असर्वो हि तावद् भवति। शतपथ ब्रा. 5.2.1.10। पत्नी गार्हपत्य अग्नि हैं (जाया गार्हपत्यः (अग्नि)। ऐत. ब्रा. 8.24)। स्त्रियों का अपमान निन्दनीय है। (न वै स्त्रियं घ्नन्ति। शतपथ ब्रा. 11.4.3.2)। पत्नी गृहलक्षमी है, साक्षात् श्री है। (श्रिया वा एतद् रूपं यत् पत्न्यः। तैत्ति. ब्रा. 3.9.4.7.)

पारस्कर गृह्यसूत्र में स्त्रियों की गौरवमयी गाथा का गुणगान वर्णित है। (तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः। पार. गृह्य. 1.7.2) मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का निवास होता है, जहाँ इनका आदर नहीं होता या इनका अपमान होता है। या इनका नहीं होता या इनका अपमान होता है, वहाँ सारे धर्म-कर्म निष्फल हो जाते है। (यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रिया। इसलिए मनु का कथन है कि जो अपने परिवार का कल्याण चाहते है ,वे स्त्रियों का सदा सन्मान करें। उन्हें आभूषण, वस्त्र आदि से अलंकृत करें।

वेदों में नारी के गौरव का अनेक प्रकार से वर्णन है। नारी को ब्रह्मा कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि वह स्वयं विदुषी होते हुए सन्तान को सुशिक्षित बनाती है। ब्रहमा ज्ञान का अधिष्ठाता है। वही यज्ञो का संचालन करता है। वह जान-विज्ञान में श्रेष्ठ होता है। अतः उसे यज्ञ में सर्वोच्य स्थान दिया जाता है। उसी प्रकार नारी को ज्ञान-विज्ञान में निपुण होने के कारण ब्रह्मा बताया गया है। (स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ)।

ऋग्वेद के एक सूक्त (10.159) मैं शची (इन्द्राणी) का गौरव वर्णित है। शची का कथन है कि मैं समाज मैं अग्रगण्य हूँ। मैं उच्चकोटि की वक्ता हूँ। मैं विद्वानों में मूर्धन्य हूँ। पति भी मेरे कहने में हैं। (मंत्र 40 मैं शत्रुआते की नाशक हूँ। मेरा कोइ शत्रु नहीं रह गया है। मैं अन्य तेजस्वियों का तेज समाप्त कर देती हूँ। मैंने अपनी सपत्नियों पर विजय प्राप्त कर ली है। मैं सदा विजयिनी रहती हूँ। पति और सामान्य जनों पर मेरा पूर्ण अधिकार है। इस सूकत में नारी के उच्च गौरव का ज्ञान होता है।

देवियों या देवताओं के गौरव का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे रत्न धारण करती थीं और सबसे पहले उन्हें सोमपान कराया जाता था। वे इन्द्र, वरुण और मरुत् देतवों के साथ यज्ञों में जाती थीं । सबसे पहले उन्हें सोपान आदि कराना उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक है ।

स्त्रियाँ अपने चरित्र पर विशेष ध्यान रखती थीं। कुमारी कन्याओं का वर्णन करते हुए कहा गया है तकि वे शुद्ध और पवित्र आचरण वाली हैं। यज्ञ करने की अधिकारिणी हैं। ऐसी योग्य कन्याओं का सुयोग्य विद्वान पतियों के साथ विवाह किया जाता है । शुद्ध आचार-विचार वाले पति-पत्नी का विवाह ही आदर्श विवाह होता था ।

नारी का गौरवमय स्थान इससे भी ज्ञात होता है कि नारी को ही घर कहा गया है। घर-घर नहीं है अपितु गृहिणी ही गृह है । गृहिणी के द्वारा ही गृह का अस्तित्व है। जायेदस्तम । यही भाव एक संस्कृत सुभाषित में कहा गया है कि गृहिणी ही घर है। 'न गृह गृहमित्याहु: गृहिणी गृमुच्यते ।

एक स्थान पर कहा गया है कि नास्तिक और कृपण पुरुष से आस्तिक और दानी स्त्री समाज से अधिक आदरणीय है । इससे ज्ञात होता है कि समाज में आस्तिक का स्थान नास्तिक से ऊँचा है और कृपण अपेक्षा दानी व्यक्ति को अधिक सम्मान प्राप्त होता है । ऐसा आस्तिक और चाहे पुरुष हो या स्त्री, गुण के आधार पर उसका सम्मान होता है । इसी प्रकार आगे वर्णन है कि भूखे-प्यासे, दीन-हीन और वाचक की जो सेवा करती है और उनकी आवश्यकता की पूर्ती करती है तथा आस्तिक विचारों की है, वह स्त्री नास्तिक पुरुष से श्रेष्ठ मानी जाती है ।

स्त्री को सरस्वती का रूप माना गया है और उसे विराट् अर्थात् विशेष तेजोमयी कहा गया है। वह अपने ज्ञान से प्रतिष्ठित हो और विष्णु की तरह आदर प्राप्त करे । स्त्री की प्रतिष्ठा अपने गुणो और योग्यता के आधार पर है । अतः कहा गया है कि वह अपनी योग्यता और अपने गुणों स्वामिनी की तरह आदर पाए । उसका जान देवों के सुख के लिए और संसार की सुख वृद्धि के लिए हो ।

उषा देवी का वर्णन एक युवती के रूप में करते हुए कहा गया है कि वह किसी प्रकार का संकोच न करते हुए आगे-आगे चलती है । अंधकार को दूर करती है और प्रकाश फैलाती है । इससे ज्ञात होता है कि निर्भीक और साहसी युवती समाज का नेतृत्व करती है ।

इन्द्राणी को एक सेनानी के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसके पैर शत्रुमर्दन के लिए अधीर है ।वह सेना के आगे-आगे चलती है। वह विजयिनी है, अद्रश्य है और कभी पराजित नहीं हुई । वह शत्रुसेनाको अपने बाणों से काटती हुई चलती है । वह शिवके पिनाक धनुष की तरह धनुष धारण करती है। शत्रुओं की सभी आकांक्षाओं पर पानी फेर देती है ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि स्त्री अबला नहीं, सबला है। इन्द्राणी का कथन है कि जो दुष्ट है कि जो दुष्ट मुझे अबला समझकर सताना चाहता है , उसका में नाश करुँगी । मैं स्वयं वीर हूँ और हिंद और अथवदद दुष्ट मुझे अबला समझकर सताना चाहता है, उसका मैं नाश करूँगी। मैं स्वयं वीर हूँ और वीर पुत्रों की माता हूँ । मरुत् मेरे सहयेगी हैं । यजुर्वेद का कथन है कि स्त्री में सहस्त्रो प्रकार का बल है । अतः उसे 'सहस्त्रवीर्या' कहते है । वह विजयिनी है। शत्रुओं से मोर्चा लेती हैं और शत्रुओं का संहार करती है ।

ऋग्वेद में स्वयंवर-विवाह का भी निर्देश है। जिस प्रकार पुरुष को स्त्री चुनने का अधिकार है, उसी प्रकार स्त्री को भी अपने गुण और शील के अनुसार अपना पति चुनती है ।

ऋग्वेद में वर्णन है कि नारी में नर को आकृष्ट करने की क्षमता है। नारी में आकर्षण शक्ति है, जिससे वह सौन्दर्य के प्रेमी व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है, अथर्ववेद का कथन है कि नर के प्रेम का आधार नारी है। प्रणयी व्यक्ति का हृदय अपनी प्रेमिका में ही लगा रहता है । सती साध्वी नारी का एक विशेष गुण यह बताया गया है कि उसका पति दीर्घायु होता है और उस स्त्री का सौभाग्य चिरस्थायी होता है। वृद्धावस्था का उसके पति पर प्रभाव नही पड़ता है । अतः वह दीर्घायु रहता है ।

ऋग्वेद में नारी को लक्ष्मी रूप में चित्रित करते हुए उसे 'कल्याणी जाया' अर्थात् मंगलकारिणी स्त्री कहा है । साथ ही कहा गया है कि उसक घर में संगीत की मधुर ध्वनि होती । घर में घोड़े रथ आदि हौते हैं ।

नारी को परिवार की स्वामिनी बताते हुए कहा गया है कि वह सास, ससुर, देवर और ननद आदि की साम्राज्ञी (स्वामिनी, मालकिन) हौती है । जहां एक ओर उसे गृहस्वामिनी और साम्राज्ञी कहा गया है, वहाँ दूसरी ओर उसके कर्तव्य बताये गये हैं कि वह पति सास-ससुर और पति के परिवार वालों को सुख देने वाली हो ।

इसका अश्निप्राय यह है कि पति के पूरे परिवार कि देखभाल और पोषण का उत्तरदायित्व स्त्री पर है । वह पूरे परिवार का भरण-पोषण करते हुए गृहस्वामिनी का पद संभाले ।

'कुलायिनी और पुरन्धि' शब्दों से परिवार के पालन-पोषण का दायित्व उस पर डाला गया है। वह कुटुम्ब की पालक हैं । एक मंत्र में उनको 'कुलपा' कहा गया है । इसका भी यही अभिप्राय है कि वह कुल या परिवार का पालन करने वाली है। 'पत्नी ही घर है" यह कहकर समाज में नारी का महत्त्व बताया गया है ।

नारी के शील के विषय में कहा गया है कि वह लज्जाशील होनी चाहिए। उसकी दृष्टि नीचे रहनी चाहिए । वह अपने अंगों को ढँक कर रखेंगे । इसका अभिप्राय है कि स्त्री को अपने अंगो का अभद्र प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। उसका सुशील व्यवहार उसके लिए शोभाजनक है । पत्नी का मधुरभाषी होना, पति के लिए सर्वोत्तम उपहार है । जो पत्नी अपने पति के अति मधुर वचन बोलती है, वह अपने वैवाहिक जीवन को मधुर बनाती है । पत्नी को प्रसन्नचित या हंसमुख होना गुण बताया गया है । सुयोग्य पत्नियाँ हंसते या मुस्कराते हुए अपने पति के पास जाती हैं । कन्या का परिश्रमी होना उत्तम गुण माना गया है। परिश्रमी कन्याएं दूसरों के मागंलिक अवसरों पर सहयोग देती हैं और उनके कार्यों में हाथ बंटाती हैं । इसका परिणाम यह होता है कि कार्यों मैं अन्य स्त्रियों अपना सहयोग देती हैं ।

नारी के वैवाहिक सम्बन्ध के विषय में कहा गया है कि पति-पत्नी के विवाह का आधार प्रेम होना चाहिए । पति पत्नी को चाहता हो और पत्नी पति को । ऐसा विवाह श्रेयस्कर है । साथ ही पति के लिए कहा गया है कि वह सम्पन्न होने पर ही विवाह करे । इसका अभिप्राय है कि जब पति कन्याके पाल-पोषण का पूरा भर उठाने मैं समर्थ हो, तभी वह विवाह करे । उत्तम विवाह के विषय मैं कहा गया है कि कन्या का आचार-विचार शुद्ध हो और वह विदुषी हो, पति के लिए कहा गया है कि वह ज्ञानी और विद्वान् हो । ऐसे योग्य वर को ही कन्या देनी चाहिए ।

आदर्श विवाह कें लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार अश्विनीकुमारों ने सूर्य-पुत्री सूर्या या सावित्री से विवाह किया था, उसी प्रकार योग्य एवं तेजस्वी पति सुशील एवं विदुषी कन्या से विवाह करें । गुणों के आधार पर होने वाला विवाह आदर्श विवाह है ।

जिस प्रकार वर को अधिकार है कि वह योग्य कन्या से विवाह करे, उसी प्रकार कन्या को भी आधिकार दिया गया है कि वह योग्यतम और अपनी रुचि के अनूकूल वर छांटे। इस प्रकार स्वयंवर-विवाह को उचित माना गया है । ऋग्वेद (मंत्र 10 सूक्त 85) और अथर्ववेद (कांड 14 सूक्त 1 और 2) में विवाह की विधि के साथ ही वर-वधू के कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन है। नव वधू की मातृगृह से विदाई और पतिकुल में स्वागत का विस्तृत वर्णन किया गया है । वधू को स्वर्ण-जटित रथ पर बैठाया जाता था, वधू सुन्दर वस्त्र पहनती थी । वधू हाथों में स्वर्ण-कंगण (कंगन) पहनती थी । नारी को सुवर्ण के आभूषणों आदि से श्रृंगार करने का विधान है ।

पति-पत्नी के पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध के विषय में अनेक मंत्रो में चर्चा है । पत्नी के विषय में कहा गया है कि पति से ही उसका सौभाग्य है । उसके सौम्य गुण उसका सौभाग्य बढ़ाने में सहायक होते है । एक मंत्र में कहा गया है कि पति-पत्नी का भाग्य उभयनिष्ठ है । दोनों का पारस्परिक प्रेम उनके भाग्य को विकसित करता है । इसका अभिप्राय है कि पति-पत्नी को अपना सर्वस्व समझे और पत्नी पति को। दोनों और आत्मसमर्पण के बिना सजिकता सम्भव नहीं है ।

एक और पत्नी के कहा गया है कि वह पतिव्रता हो। ऐसा नारी ही पति को प्रिय होती है और वह सौभाग्यवती होती हैं । दूसरी ओर पति के लिए आदेश है कि एक-पत्नीव्रत का पालन करे । वह अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्री से प्रेम न करे ओर किसी अन्य स्त्री का नाम अपनी पत्नी के सामने कहे ।

इसी प्रसंग में पति के कुछ अन्य कर्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है । एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि स्त्री को वश में करने का एक ही उपाय है और वह है हृदय-शुद्धि। जो मन में हो वह बाहर भी हो और जो व्यवहार बाहर है, वह मन से हो। ऐसे शुद्ध हृदय वाला व्यक्ति ही स्त्रियों को वश में रख सकता है । अन्यथा स्त्रियों का मन नानारूप वाला है और वह विविध बातों को सोचने के लिए विवश हो जाता है । पति का कर्तव्य है कि वह धन-धान्य आदि से पत्नी को प्रसन रखे । वह पत्नी के मनोरथों को पूर्ण करे । एक मंत्र में यह भी निर्देश है कि यदि पति-पत्नी में कोई मतभेद हो जाए या किसी प्रकार का मनमुटाव हो तो उसे मिलकर सुलझायें और मतभेद दूर करें। उन्हें ही अपना परिवाररूपी संसार सुधारना है ।

प्रस्तुत सिंहावलोकन से स्पष्ट है कि वैदिक समाज में नारी का जो गौरवमय स्थान था, उसमे धीरे धीरे अवनति होने लगी थी फिर भी यदि एक और से उत्तरवर्ती समाज में नारियों के अधिकारों को सीमित कर दिया गया तो दूसरी और उन्हें निसहाय नही छोड़ा तथा और साध्वी स्त्रियों के प्रति कभी भी श्रद्धा और सन्मान का अभाव नहीं था । इस प्रकार हम यह कह सकते है की वेदों के समय में नारी का खूब महत्व था । नारी को नारायणी का स्वरूप कहा गया था ।

संदर्भसूचि

(1) महाभारत कालीननारी पृ.27

(2) महाभारत कालीननारी पृ.14
(3) रामायण में नारी पृ.156
(4) रामायण में नारी पृ.157
(5) रामायण में नारी पृ.158
(6) वेदों में नारी पृ.282
(7) वेदों में नारी पृ.284
(8) वेदों में नारी पृ.286
(9) वेदों में नारी पृ.291